प्रकाशक ,

पो० कठमणि शास्त्री

संचालक विद्या-विभाग,

कांकरोली.

प्रति ५०००] वि० सं० २०१४ मूल्य आठ आना [illegible]

भारतीय शक संवत १८७९

मुद्रक —

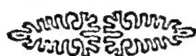
चन्द्रकान्त भूषणदासजी साधु

चेतन प्रकाशन मन्दिर, (प्रिं. प्रेस)

चेतनधाम, सियाबाग, वडोदा

ता १-१-१९५८

卐 कांकरोली-दिग्दर्शन 卐



*भौगोलिक वर्णन—

श्रीद्वारकाधीश प्रभु की नगरी 'कांकरोली' राजस्थान में मेवाड़ का एक देवस्थान है। यह प्रान्त जिसे 'मेवाड' या 'मेदपाट' कहते हैं, राजस्थान के दक्षिण विभाग में २३, ४९ से २५, १८ उत्तर अक्षांश और ७३, १ से ७२, ४९ पूर्व देशान्तर के बीच फैना हुआ भूभाग है। इसका क्षेत्रफल १२६९१ वर्गमील है। जबसे मेवाड की राजधानी चितौड से उठ कर उदयपुर में आई, तब से यह राज्य 'उदयपुर' राज्य भी कहलाने लगा था। अब यह भारत की स्वतन्त्रता के फलरूप राजस्थान का प्रान्त बन गया है। वास्तव में अमर मेवाड भारत का हृदय है जो-सदा स्वातन्त्र्य के लिये स्पन्दित होता रहा है।

---

*"कांकरोली का इतिहास" नामक विद्याविभाग से प्रकाशित ग्रन्थ से उद्धृत।

इसके उत्तर में अजमेर-मेरवाडा और शाहपुरा का, पश्चिम म जोधपुर और सिरोही का, नैऋत्य कोण में ईडर, दक्षिण में डूगरपुर बांसवाडा और प्रतापगढ का, पूर्व में नीमच टोंक का परगना, नीवाहेडा और कोटाबूदी का प्रान्तीय भाग है। ईशान कोण में देवली के निकट जयपुर का प्रान्त आ गया है।

कांकरोली मेवाड में एक प्रसिद्ध नगरी है जो-उसके राजनगर [राजसमन्द] जिले के अन्तर्गत है। यह उदयपुर से ४० माइल उत्तर-पूर्व और नाथद्वारा से ११ माइल उत्तर में रायसागर तालाव की बांध और किनारे पर अवस्थित है। श्रीद्वारकाधीश प्रभु की नगरी देवस्थान होने के कारण यह श्रीद्वारकापुरी का, रायसागर समुद्र का, तथा इसमें गिरनेवाली 'गोमती' नदी गोमती का स्मरण कराकर उसकी पूर्णता में चार चांद लगाते हैं। 'राजप्रशस्ति' काव्य में इसका नाम 'कांकरोली' और प्राचीन ताम्रपत्रों में 'कांकडोली' भी मिलता है। शिलालेखों में भी यही नाम प्रयुक्त हुआ है।

रायसागर तालाव बनने के पहिले यह छोटी सी आबादी का गाम था। 'राजप्रशस्ति' काव्य में राजसमुद्र के निर्माण प्रकार में इसके कई कुवा, बावडी और साथ की जमीन के तालाव के भीतर आ जाने आदि की बात कही गई है। इसके बाद तालाव बन जाने पर उसके बांध का वर्णन कर उसकी लंबाई, चौडाई उचाई, और बने हुए मंडप आदि तथा श्रीद्वारकाधीश के बिराजमान होने का उल्लेख किया गया है। कांकरोली नगरी के पूर्व 'आसोटिया' गाम है, उसके आगे कोण में तालेडी नदी है, दक्षिण में दोहिन्दा गाम की सीमा, पश्चिम में मौजा हवाला, मडाया तथा राजनगर की सीमा

मिलती है। इसके पूर्व से लेकर पश्चिम तक उत्तर में विशाल रायसागर तलाव हिलोरें मारता है।

कांकरोली में सनातन धर्म के सभी सम्प्रदाय विद्यमान हैं, जिसमें वैष्णव धर्मानुयायियों की विशेषता है। चारों वर्ण के नागरिक हैं, जिनमें वैश्य वर्ग अधिकांश जैन-धर्मानुयायी है। इस्लाम धर्म के मतावलम्बी भी हैं। प्रायः सभी जातियों और पेशावालों के समानाधिकार हैं, और आवश्यक व्यवसाय, कलाकौशल, व्यापार, यातायात आदि से यह नगरी सजीव एवं प्रकाशमान है। मेवाडी, व्रजभाषा, हिन्दी और गुजराती भाषा का प्रचलन है। स्त्रियों में मेवाडी, और व्रजी तथा पुरुष-वर्ग में आज के युग का सभी प्रकार का वेश दृष्टिगोचर होता है। उत्सव आदि पर व्रज का वेश भी लोचनगोचर हो जाता है। जनसंख्या लगभग ७ हजार है।

रायसमुद्र—

[रायसागर] जिसके किनारे पर बांध के सहारे कांकरोली बसाई गई है, भारतवर्ष का एक दर्शनीय महान जलाशय है। वास्तव में कांकरोली की शोभा रायसागर से और रायसागर की शोभा कांकरोली से है। इसके निर्माण सम्बन्ध में स्व० श्रीओझाजी ने अपने उदयपुर राज्य के इतिहास में खूब लिखा है, जिसका आवश्यक सारांश यहां दिया जाता है—

पहिले पहिल महाराणा अमरसिंहजी ने राजनगर की पहाडियों में बहनेवाली गोमती नदी को रोक कर एक तालाब के लिये बांध बनवाया, पर यह नदी-प्रवाह से टिक न सका और टूट गया। इसके बाद महाराणा रायसिंह ने अपने कुंवर

पदे के समय विवाहार्थ जैसलमेर और राज्यासीन होने पर सं० १७१८ में श्रीरूपनारायण के दर्शनार्थ जाते हुए फिर से इस मौके को देखकर विशाल तालाव बनाने का निश्चय किया। इसके बनवाने के विषय में कई बातें प्रसिद्ध हैं, जिनका उल्लेख यहां अनावश्यक सा है। संभवतः पुण्य आयोजन, कृषिविकास और अकालपीड़ितों को साहाय्य देने के लिये इसका निर्माण किया गया यह स्पष्ट है।

इसके अलग-अलग बांधों की नीव की खुदाई सं० १७१८ माघ वदी ७ को प्रारंभ हुई। नींव खुद जाने पर सं० १७२१-२२ में वैशाख शु० १३ के दिन पुरोहित गरीबदास के ज्येष्ठ पुत्र रणछोडराय के हाथ से नींव का पत्थर रखवा कर काम शुरु किया गया, और सं० १७२७ [चैत्रादि] सं० १७२८ आषाढ सुदी ४ को इसमें अन्य स्थान से जल लाकर नाव का मुहूर्त किया गया। वर्षा में तालाव में गोमती, तालेडी और केलवा की नदियों से जल भर जाने पर सं० १७३१ श्रावण सुदी ५ के दिन उसमें कारीगरों का बनाया हुआ जहाज डाला गया, और सं० १७३२ माघ सुदी ९ को प्रतिष्ठा का कार्य प्रारभ हुआ।

प्रथम दिन महाराणा ने उपवास प्रायश्चित्तादि कर नवमी को प्रात मंडप में देवपूजन कर हवनादि शान्ति की। रात्रि को जागरण भजन होकर प्रातः तालाव की परिक्रमा हुई, जो वेदपाठियों और समस्त राज-परिकर के साथ पैदल चलकर १४ कोस की ५ दिन में समाप्त हुई थी। पूर्णिमा के दिन आवश्यक विधिविधान के बाद पूर्णाहुति, अभिषेक आदि सम्पन्न कर महाराणा राजसिंहजी ने अपने पौत्र अमरसिंह के साथ १२००० तोला की सुवर्ण-तुला की, सप्त सागर,

सप्त पर्वत आदि आदि विविध दानों के बाद अनेक दान हुए। पट्ट महिषी श्री सदाकुंवरीजी ने चांदी की, पुरोहित गरीबदास ने सोने की, उसके पुत्र रणछोडराय ने, रायकेसरी सिंह ने, टोडे के रायसिंह की माता और बारहठ केसरीसिंह ने भी चांदी की तुलाओं का दान किया था। इस उत्सव के उपलक्ष्य में महाराणा ने गरीबदास को १२ गांव तथा अन्य पंडितों, ब्राह्मणों, चारों, भाटों आदि को ५५२ घोडे, १३ हाथी, सिरोपाव पुष्कल, दक्षिणा वस्त्र तथा मुख्य शिल्पी को २५००० रु० दिये थे। अपने मित्र संबन्धी राजों महाराजों के पास उनकी योग्यता के अनुसार हाथी, घोडे, सिरोपाव भेजे गये और योग्य कर्म-चारियों को पारितोषक के द्वारा सन्तुष्ट किया गया था। उत्सव में ४६००० ब्राह्मण सम्मिलित हुए जिनके भोजन वस्त्रादि का प्रबन्ध किया गया। इसके निर्माण में १०५०७६०८ रु० व्यय हुए। प्रशस्ति के रूप में नौचौकी स्थान पर बड़ी बड़ी शिलाओं के ऊपर 'राजप्रशस्ति' नामक संस्कृत काव्य खुदवाया गया, जो भारत में शिलाखंड पर खुदा हुआ सबसे बड़ा संस्कृत का काव्य है। इसकी रचना तैलंग कठोडी मधुसूदन के पुत्र रणछोड भट्ट ने की है, जिन्हे अच्छा सन्मान दिया गया था।

रायसागर की 'नौचौकी' का बांध राजनगर के पास कांकरोली से १ माइल की दूरी पर पश्चिम दिशा में है। यह दो पहाडों के बीच गोमती नदी के मार्ग को रोक के बनाया गया है। प्राकृतिक रमणीयता के बीच विशाल सुदृढ श्वेत संगमरमर के पत्थरों से बनाया गया यह बंध अपनी आप उपमा है। सफेद पत्थर पर छतरियों की विविध दृश्यों की शिल्पकारी

दर्शक के मन को मोह लेती है। आज से लगभग ३०० वर्ष पहिले की यह स्थापत्य कला आज के शिल्पियों को आश्चर्य में डालनेवाली है। बेलबूटों की विभिन्न शैली, नानाविध पक्षियों और पशुओं, मानवों का क्रीडा-विहार चेष्टाए कला के साथ रस की उत्पत्ति कर मन में उमंग भर देती है। जड पत्थरों में कुशल कारीगरों ने जिस मानव-भावना की स्थापना यहां की है वह अनोखी है। तुलादान के स्मारक विशाल कलापूर्ण तोरणद्वार, जिनमें से एकाद को विधर्मियों ने क्षति पहुंचाई है, आज भी उद्ग्रीव होकर प्राचीन गाथा को नक्षत्रलोक तक पहुंचाते दीख पड़ते हैं। प्रशस्त नौ चौखटे जिनमें प्रत्येक में नौ नौ सीढियां है, जिस सूत्र-मान से बनाई गई हैं, दर्शनीय हैं। इसका नाम इस कारण ' नौचौकी ' पड़ गया हैं। शरद की चादनी में यहां का दृश्य प्रकृति के साथ राग मिला कर गाता हुआ प्रतीत होता है। यहीं पर राजप्रशस्ति काव्य नौ तख्तों में खुदा हुआ है।

नौचौकी की पश्चिम पहाडी पर महाराणा राजसिंह का बनवाया हुआ प्राचीन महल आकाश को छूता सा दीख पड़ता है। उसी के पास कुंवरपदा के महल हैं। ऊपर पर्वत के शिखर पर चारों ओर की नैसर्गिक छटा सावन में काश्मीर की याद दिलाती है। इधर नौचौकी के पूर्व पर्वत शिखर पर 'दयाल शाह' का किला नामक जैन-मंदिर है, जो इसी नाम के धनी मानी धर्मप्राण राजमत्री ने सं० १७३२ में बनवाया था। पर्वतमाला के उत्तर जहां-विशाल जलाशय की तरगमाला उपत्यका से अठखेलियां खेलती है, वहां-दक्षिण ओर शस्यश्यामला वसुन्धरा मरकतनिभ अपना आंचल फैला कर मन मोहती है। नौचौकी वास्तव में महाराणा के यश का अधिकृत पट्ट है.

'राजसमुद्र'. की पूर्वी बांध बड़ी पाल' के नाम से प्रसिद्ध है। जब पाकिस्थान की स्थापना नहीं हुई थी, यहां सीप्लेन ड्रोम था ,जहां इस जलाशय में विशालकाय वायुयान उतर कर विश्राम लेते थे। समुद्र में मत्स्याकार वायुयानों का घनघोर घोष एक कौतूहल उत्पन्न करता था। पर राजनैतिक आवश्यकता ने अब इस आनन्द को किरकिरा कर दिया है। यह बांध भी विशाल है, और कुशलता के साथ मनोहर ढग से बांधा गया है। इसी पाल के आगे कमल बुर्ज छतरी है, जिसके पास जल का विशाल प्रपात ताल्लाब के भर जाने पर गिरा करता है। आजकल यहां पी० डब्ल्यू० डी० और सिंचाई विभाग के कार्यालय हैं। नौचौकी और बडी पाल के ठीक बीच में पक्के घाटोंपर कांकरोली बसी हुई है, जिसके मंदिर-महलों के अभ्रलिह प्रासाद जल में अपना प्रतिविम्ब डाल कर अपनी गहराई का अनुमान लगाते हैं।



*श्रीद्वारकाधीश प्रभु—

पौराणिक झलक- प्रागैतिहासिक जगत का ज्ञान विशेषत: पौराणिक अनुश्रुतियों पर अवलम्बित होता है। आधुनिक खोज द्वारा उपलब्ध प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र, स्तूप तथा सिक्काओं से भी उनकी प्रामाणिकता पर प्रकाश पड़ता है। इस आधार पर श्रीद्वारकेश प्रभु का वर्णन श्रीभागवत में प्रासंगिक रूप में मिलता है, जो इस प्रकार —

सृष्टि के आदि काल में ब्रह्माजी के तप करने पर भगवान श्रीहरि ने प्रसन्न होकर उन्हें जिस प्रकार स्वरूप-दर्शन दिये वह पूर्ण रूप में श्रीद्वारकाधीश के रूप में विद्यमान है। इसी प्रकार महर्षि कर्दम की तपस्या के फल स्वरूप भगवद्दर्शन का स्वरूप साम्य इसी रूप में प्रत्यक्ष होता है। उक्त महर्षि ने, ब्रह्माजी के आदेशानुसार जिस पूजा-प्रकार से आराधना की थी, उससे सेव्य-स्वरूप की प्राचीनता विदित होती है। भगवान् कपिल महर्षिद्वारा माता देवहूति के लिये वर्णित भक्तियोग में जिस स्वरूप के ध्यान का उल्लेख है, वह जैसा का तैसा इस स्वरूप में हमें साक्षात् होता है।

सुप्रसिद्ध भारत-सम्राट् महाराजा अम्बरीष का उपाख्यान किसने नहीं सुना? वे प्रतापी वीर पूर्ण धार्मिक और भक्ति-परायण महात्मा थे। उनकी कथा सर्वत्र विदित है। वे अपने भक्तियोग में जिन सेव्य प्रभु का आराधन करते थे वह श्रीद्वारकाधीश का ही स्वरूप था। श्रीद्वारकेश प्रभु स्वकीय भक्त पर जो सानुभावता जताते थे और उनका सुदर्शन चक्र जिस प्रकार उनके राज्य की रक्षा करता था, वह सब दुर्वासा के कथा प्रसंग में आ जाता है। महाराजा अम्बरीष की सेवा-पूजा, रागभोग, राजसी ठाटवाट प्रसिद्ध था। यह स्वरूप परम्परा से वहीं से प्राप्त हुआ है, ऐसा द्वा० प्रागट्य-वार्ता से विदित होता है।

---

*श्रीद्वारकाधीश की प्रा० वार्ता कांकरोली से प्रकाशित ग्रन्थ के आधार पर।



महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य—

शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्ग के संस्थापक और प्रवर्तक जगद्गुरु श्रीवल्लभाचार्य अपने ऐतिहासिक युग में विश्वविदित महापुरुष हुए हैं। इनका समय सं० १५३५ से सं० १५८७ है। आन्ध्र-जातीय तैलंग ब्राह्मण वेल्लनाटीय-कुल में इनके पिता श्रीलक्ष्मण भट्टजी के समय तक सौ सोम-यज्ञों का अनुष्ठान पूर्ण किया गया था, जिसके फलस्वरूप भगवान के मुख 'वैश्वानरावतार' आपका प्रादुर्भाव भारत में उस समय हुआ था, जब विधर्मियों के सतत आघातों से भारतीय संस्कृति धर्म-परंपरा म्रियमाण हो रही थी, हिन्दुजाति को आश्वासन और उसके लिये जीवन का संदेश देकर सत्पथ दिखाने की आवश्यकता थी, चारों ओर लोग परधर्म के आक्रमण से त्रस्त हो रहे थे, वे अपना धर्म छोडने को बाध्य थे या मरने को। यह सब सच है कि, इस समय आचार्य वल्लभ और इन जैसे ही अन्य महापुरुष यदि भारत में अवतार न लेते तो आज भारतीयता बचती या नहीं? और हम अपने स्वरूप में आज स्वतन्त्र होते या नहीं? उस समय के युगपुरुषों में महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य का ऐसा ही स्थान है, जिसकी आवश्यकता की पूर्ति अन्य से असंभव थी।

परचक्र-भय से दक्षिण की ओर जाते हुए जब इनके मातपिता मध्यप्रदेश के चम्पारण्य नामक स्थान से निकले वैशाख कृ० ११ के दिन सं० १५३५ में इनका प्रागट्य हुआ था। यज्ञोपवीत-संस्कार के बाद लगभग ११ वर्ष की वय में ही श्रीवल्लभ ने वेद-वेदान्त समस्त शास्त्रों में गंभीर ज्ञान अधिगत कर लिया और वैदुष्य से विद्वानों में प्रतिष्ठा पाई।

आपने विचार की परंपरा में एक नया मोड दिया और अभीतक प्रचलित सभी अद्वैत सिद्धान्तों की आलोचना कर वेद का वास्तविक रहस्य 'शुद्धाद्वैत-सिद्धान्त' के रूप में प्रचलित किया। लोक-कल्याण के लिये कर्म, ज्ञान और भक्ति के सामञ्जस्य रूप में पुष्टिमार्ग की स्थापना की, जिसमें भक्ति को प्रधानता देकर भगवान के अनुग्रह . पुष्टि .को सर्वसुलभ जीवोद्धारक रूप में अंगीकार किया। वैदिक क्रिया-कलाप में वर्णाश्रम धर्म को प्रश्रय देते हुए भी आचार्य वल्लभ ने भक्ति में सभी वर्ण और आश्रमों का अंगीकार किया। अहंता ममतात्मक संसार का परित्याग कर यावन्मात्र जगत के प्राणियों को, मानवों को भगवद्रूप बताकर उनके कल्याणार्थ प्रयत्नशील रहते हुए भगवत्प्रेम प्राप्त करना ही इनके सिद्धान्त का प्रधान लक्ष्य है। पुष्टि अर्थात् भगवदनुग्रह प्राप्त करना ही जीव का परम ध्येय है। इस तथ्य के कारण इनका प्रचलित मार्ग 'पुष्टिमार्ग' कहलाया।

आचार्य महाप्रभु ने अपने प्रारंभिक जीवन में भारत की तीन बार पैदल यात्राएं की। जनसमाज की, तीर्थस्थलों की पण्डित-मण्डली की स्थिति सुधारने के लिये उन्होंने व्यापक धर्म का प्रचार किया, व्याख्यान दिये, शास्त्रार्थ किये और अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया। अनन्त मानव-समाज को शरण-दीक्षा देकर सत्पथ पर आरूढ किया और मानव जीवन की उपादेयता बतलाई। इनके शिष्यों में ८४ शिष्य ऐसे आदर्श हुए जो-दैवी गुणों के प्रतीक माने जाते हैं। भारत-परिक्रमा के समय जहा २ आपने विराजमान होकर भागवत की सप्ताह की वहां २ बैठकें स्थापित हुई जो समस्त भारत देश में ८४ संख्या में मानी जाती हैं।

भक्तिमार्गीय इस पुष्टि-संप्रदाय की यह विशेषता थी। जिनके लिये वैदिक मार्ग से आत्मोद्धार करना असंभव सा था

उन्हें भी इसमें उतना ही अधिकार दिया गया जो एक उच्च वर्ण के जन को प्राप्त हो सकता था। भगवान की भक्ति में स्त्री-शूद्र, चाण्डाल, पतित, म्लेच्छ-यवन आदि सभी अधिकारी माने गये, जिसके कारण आचार्य का मार्ग अत्यधिक लोकप्रिय हो गया। आचार्य के त्यागमय सादा जीवन और उच्च-विचार के आदर्श ने साधारण जनसमाज के साथ राजा-महाराजा, विद्वत्-समाज; यहांतक कि, विधर्मियों को भी प्रभावित किया था।

महाप्रभु ने लोकव्यवहार को आदर्श बनाने के लिये गीता का आदर्श सामने रक्खा। भागवत के द्वारा स्वकीय सिद्धान्त की विशद व्याख्या की और वेद-ब्रह्मसूत्र को प्रमाण मानकर अपने मन्तव्य को लोकशास्त्र दोनों से समन्वित किया। परिणामतः यह मार्ग सभी को प्रिय हुआ। आपके वैदुष्य से प्रभावित होकर विजयनगर के सम्राट् राजा कृष्णदेव और ओडछा के महाराजा रामभद्र ने आपका कनकाभिषेक किया जो उस समय सबसे बडा सार्वभौम विद्वत्सन्मान माना जाता था। इन्ही की विशाल सभा में आचार्य पद समर्पित किया गया जिसमें श्रीवल्लभ विष्णुस्वामि-सम्प्रदाय के संरक्षक स्वीकार किये गये।

विष्णुस्वामि-सम्प्रदाय के साथ पुष्टिमार्ग की सरसता ने भारतीय जीवन की प्रणाली में जो-कर्म, ज्ञान, भक्ति के रूप में शरीर, मस्तिष्क और हृदयभावना को अपनाया वह विश्वधर्म का प्रोज्वल प्रतीक है। साहित्य-संगीत कला यह तीनों अपनी उच्चता के साथ मानव-जीवन के पारमार्थिक उपयोग में जितने इस मार्ग में घुलमिल गये हैं वह इसका एक चमत्कार है। हिन्दी के स्वयं महात्मा सूरदास, परमानन्ददास आदि अनेक कवियों, संगीतज्ञों, कला-कोविदों को इस मार्ग ने चमका दिया है।

श्रीमहाप्रभु ने गिरिराज में श्रीनाथजी-गोवर्द्धनधरण की प्रतिष्ठा कर भगवत्सेवा-प्रणाली को जिस सुन्दर रूप में चालू किया था वह सभी लोगों की पहुंच के भीतर थी। कृतपापों के लिये सच्चा मानसिक प्रायश्चित्त कर आत्मा को भगवच्चरणों में विनिवेदित कर गुरुकृपा से अपना कल्याण साधना जीव के हाथ की बात थी। अनेक भगवद्-विग्रहों को-जो विधर्मियों के भय से अप्रकट थे, श्रीवल्लभ ने निर्भय होकर प्रकट किया और उनकी सेवा-पूजा द्वारा स्वधर्मपालन की शिक्षा से अनेक स्थलों में जन-जागृति की। महाप्रभु द्वारा प्रतिष्ठापित ऐसी ८, १० भगवत्स्वरूप निधियां हैं, जो-भारत में आज भी सम्प्रदाय का केन्द्र मानी जाती हैं, जिनका समृद्ध किन्तु वैभवान्तर्हित रूप आज भी देखने को मिलता है।

इन्ही प्रतिष्ठानों में श्रीद्वारकाधीश प्रभु का एक अधिष्ठान है, जो-कांकरोली में अपना वर्चस्व स्थापित किये हुए हैं। महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य ने अपने शिष्य कन्नौज-निवासी क्षत्रिय दामोदर-दास को श्रीद्वारकाधीश का स्वरूप सं० १५५६ में सेवार्थ पधरा दिया था। उन्होंने कई वर्ष राजसी वैभव के साथ प्रभु की सेवा की। दामोदरदास के गोलोकवासी हो जाने पर उनकी पत्नी ने देश-काल-परिस्थिति को देखते हुए श्रीप्रभु का स्वरूप पुन अडेल नगर में महाप्रभु के समीप पधरा दिया और अपनी समस्त सम्पत्ति सम्प्रदाय की सेवा के लिये समर्पण कर दी।

श्रीमहाप्रभु के अनन्तर सं० १५८७ में उनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीगोपीनाथजी (सं० १५६८ से १६२०) सम्प्रदाय के संचालक-पद पर विराजे, पर आपके त्यागमय जीवन होने के कारण कनिष्ठ भ्राता श्रीविठ्ठलनाथजी ने उसका संचालन किया।

प्रभुचरण श्रीविठ्ठलेश्वर—

प्रभुचरण श्रीविठ्ठलनाथजी गुसांइजी का समय सं० १५७२ (पौष कृ० ९) से सं० १६४२ तक है। अपने ज्येष्ठ भ्राता के बाद यही संप्रदाय के संरक्षक संचालक हुए। आपके आदर्शमय जीवन, अगाध पांडित्य, राजनैतिक कुशलता और सद् व्यावहारिकता ने इतनी लोकप्रियता पाई कि, अकबर जैसे यवन बादशाह भी सम्प्रदाय की ओर आकृष्ट हुए, समय-समय पर उन्होंने सभी प्रकार की राजनैतिक सुविधाएं देकर इनके वर्चस्व को स्वीकार किया। सं० १६२८ में श्रीगुसांइजी ने राजनीति को प्रत्यक्ष प्रभावित करने के लिये गोकुल को अपना स्थायी निवास बना कर उसे पुनः समृद्ध व्रजभूमि का केन्द्र बना दिया। उस समय भारत में गोकुल पुष्टिमार्ग का वह केन्द्र था, जहां से चारों ओर भक्तिभागीरथी बह कर जनजीवन को पावित एवं परितृप्त करती थी।

प्रभुचरण ने सम्प्रदाय में नई विशेषताओं का समावेश किया और उसके उदात्त समृद्ध रूप को जनता के सामने ला खड़ा किया। पितृचरण द्वारा लगाए हुए पुष्टि-कल्पपादप में आपके ही समय में अंकुर, पल्लव, पुष्प और फल लगे। अनेक यात्राएं करके, विविध ग्रन्थों की रचना करके, सभी जीवों को आश्रय मे लेकर, इन्होंने इस मार्ग को और भी प्रशस्त किया। भारत के विविध प्रान्तों में परिभ्रमण कर जबकि-यात्राएं सुविधाजनक नहीं थीं, श्रीविठ्ठलेश्वर प्रभुचरण ने समय का लाभ उठाया। लाखों की तादाद में आपके शिष्य हुए। जिनमें कोई जातिवाद का कटु विभेद नहीं था। रसखान और तानसेन बीरबल और टोडरमल्ल, कई राजा और महाराजा इनके अनुगामी

बने, जिनकी वार्ताएं आज भी बडे आदर के साथ पढ़ी-सुनी जाती हैं। प्रभुचरण के शिष्यों में २५२ वष्णव अतिशय आदर्श माने जाते हैं। इन्होंने श्रीवल्लभाचार्य के चार शिष्य सूरदास, परमानन्ददास, कुभनदास और कृष्णदास को लेकर अष्टछाप की स्थापना की, जिसमें अपने शिष्य गोविन्दस्वामी, चत्रुभुजदास, छीतस्वामी और नन्ददास का समावेश किया। इस अष्टछाप ने हिन्दी साहित्य को जैसा समृद्ध बनाया उसका ऋण चुकाया नहीं जा सकता। यह सच है कि, इसी काव्य-परंपरा ने रामभक्ति की शाखा को सबल दिया और दोनों ने मिल कर राज्यभाषा उर्दू-फारसी को जनजीवन में घुसने की रोक लगाई। गुजरात, मद्रास, बगाल और सिंध-काश्मीर और महाराष्ट्र में हिन्दी, व्रजभाषा का प्रचार हुआ, जिसका परिणाम आज हमारे सामने राष्ट्रभाषा हिन्दी के रूप में आ रहा है।

साहित्य-सगीत-कला की उन्नति को इस समय श्रीविठ्ठलेश्वर प्रभुचरण ने जो सहारा दिया, उसे हम आज भी देख सकते हैं। इसी प्रकार उन्होंने श्रीनाथजी, श्रीनवनीत-प्रिय के साथ सम्प्रदाय के सात पीठों की स्थापना की। अपने सात पुत्रों को सेवा-प्रचार का भार सौंप कर मौलिक तथा व्यवस्थित रूप में सम्प्रदाय की पद्धति का प्रचलन किया। आपके आश्रय में दक्षिण से अनेक विद्वान सजातीय पुरुष आकर रहने लगे, जिन्होंने संस्कृत-हिन्दी के अनेक सर्वविध ग्रन्थों का प्रणयन कर साहित्य की अनुपम श्रीवृद्धि की है।

श्रीप्रभुचरण ने सं० १६४२ में गोलोकवास के पूर्व सम्प्रदाय के सात केन्द्र स्थापित किये, जिनका आधिपत्य सात पुत्रों को दिया। जो इस प्रकार हैं—

स०	अधिपति	जन्म	स्वरूप	संप्रति
१	श्रीगिरिधरजी	१५९७	श्रीमथुरेशजी	कोटा से जतीपुरा
२	श्रीगोविन्दरायजी	१५९९	श्रीविट्ठलनाथजी	नाथद्वारा
३	श्रीबालकृष्णजी	१६०६	श्रीद्वारकाधीशजी	कांकरोली
४	श्रीगोकुलनाथजी	१६०८	श्रीगोकुलनाथजी	गोकुल
५	श्रीरघुनाथजी	१६११	श्रीगोकुल चन्द्रमाजी	कामा
६	श्रीयदुनाथजी	१६१५	श्रीबालकृष्णजी	सूरत
७	श्रीघनश्यामजी	१६२८	श्रीमदनमोहनजी	कामा

इन स्वरूपों के अतिरिक्त श्रीनवनीतप्रियजी श्रीगुसांइजी के व्यक्तिगत सेव्य ठाकुर रहे और श्रीनाथजी की सेवा का अधिकार समान रूप में सभीका स्वीकार किया गया।

तृतीय पीठ की परंपरा—

श्रीप्रभुचरण के तृतीय पुत्र श्रीबालकृष्णजी थे, इनका समय सं० १६०६ से १६५० तक माना जाता है। अपने भ्राताओं के समान यह भी सम्प्रदाय के मर्मज्ञ विद्वान, गंभीरचेता, व्यवहारकुशल और महनीयकीर्ति पुरुष थे। इन्होंने भी सम्प्रदाय का ग्रन्थ-साहित्य लिखा और वैष्णव-सृष्टि में धार्मिक जागृति उत्पन्न की। इन्ही के दायभाग में श्रीद्वारकाधीश प्रभु की सेवा और सम्पत्ति सं० १६४२ के लगभग आई, जिससे गोकुल में तृतीय पीठ की स्थापना हुई और यह उसके पीठाधीश्वर माने गये। श्रीद्वारकेश प्रभु के साथ इन्हे श्रीबालकृष्णजी का भी स्वरूप मिला। क्यों कि, श्रीगुसांइजी के छठे पुत्र श्रीयदुनाथजी ने स्वरूप छोटा होने के कारण उन्हे स्वीकार नहीं किया था और वे अधिकांश श्रीबालकृष्णजी के साथ ही रह कर सेवा किया करते थे।

श्रीबालकृष्णजी केवंशज श्रीव्रजरायजी ने आगे चल कर श्रीबालकृष्णजी (ठाकुरजी) को प्राप्त किया और अहमदाबाद से ले जाकर उन्हे सूरत में प्रतिष्ठित कर अपना घर बसाया ।

श्रीबालकृष्णजी महाराज के पुत्र श्रीद्वारकेशजी हुए। इनका समय सं० १६३० से १६७० है। यह भी योग्य विद्वान व्यक्ति हुए, पिता के अनन्तर इन्होंने यमुनातट पर एक नया मंदिर बनवा कर प्रभु को उसमें विराजमान किया। श्रीद्वारका-धीश की सेवा की सुन्दर व्यवस्था की और सर्वत्र प्रचार कर धर्म को प्रतिष्ठित किया।

श्रीद्वारकेशजी के पुत्र श्रीगिरिधरजी प्र० हुए, जिनका समय सं० १६६२ से १७५० है। यह प्रभावशाली कर्तव्यपारायण महापुरुष थे। सं० १७०४ के लगभग महाराणा मेवाडनरेश जगतसिंहजी प्र० ने गोकुल जाकर श्रीद्वारकाधीश के दर्शन किये। सम्प्रदाय की सेवा साहित्य प्रणाली प्रचार और सर्वसुलभता के कारण महाराणा अतिशय प्रभावित हुए और उन्होंने वैष्णव धर्म की दीक्षा लेकर मेवाड का आसोटिया गाम श्रीद्वारकाधीश को भेट किया था। इसी समय से मेवाड के महाराणा वैष्णवधर्मानुयायी हुए और मेवाड तथा राजस्थान में वैष्णव धर्म फैलने लगा। यही कारण था कि, समय आने पर सुरक्षा का स्थान समझ कर आगे यहां श्रीद्वारकाधीश, श्रीनाथजी, श्रीविठ्ठलनाथजी आदि के स्थान स्थापित हुए। अतः मेवाड की साम्प्रदायिक प्रसिद्धि का श्रेय और प्राथमिकता इसी तृतीय पीठ को प्राप्त होती है।

गोकुल स्थान में श्रीद्वारकाधीश की सेवा सं० १६२८ से १७२० तक श्रीगिरिधरजी की विद्यमानता में होती रही।

सं० १६२८ में गोकुल-स्थापना के बाद श्रीद्वारकाधीश को श्रीगुसांइजी ने अडेल से गोकुल में विराजमान किया था। प्रभु यहां ९२ वर्ष तक विराजमान होकर भक्तों को व्रज-लीला का साक्षात्कार कराते रहे।

आसोटिया और कांकरोली—

श्रीगिरिधरजी के अन्तर श्रीव्रजभूषणजी (प्र०) तिलकायित हुए, जिनका समय सं० १७०० से १७५८ है। यह श्रीगिरिधरजी के दत्तकरूप में आये; क्योंकि, इनके पुत्र श्रीद्वारकानाथजी सरस्वती-उपासना के कारण अपने को अन्याश्रयी समझ कर संसार से विरक्त हो गए थे। उनके कोई संतति नहीं थी। काशी में अध्ययन के लिये इन्होंने मान्त्रिक शक्तिभावना का आश्रय लिया था।

श्रीव्रजभूषणजी जबकि, पूर्णवयस्क नहीं थे, औरंगजेब का शासन था। राज्य का सहारा पाकर श्रीव्रजरायजी ने इस घर पर अपना स्वत्व स्थापित करना चाहा और उथलपुथल मचाई। परिणामत. श्रीव्रजभूषणजी को अपने अभिभावक श्रीगंगाबेटीजी के साथ चुपचाप अहमदाबाद चले जाने में ही श्रेय दीखा और वे सं० १७२० के अन्त में गोकुल से रवाना हो गये।

श्रीद्वारकाधीश प्रभु अहमदाबाद के रायपुर नामक मुहल्ला में एक भूगर्भीय मकान में विराजमान हुए। वहां भी मुसलमानी शासन होने से सेवा पूजा प्रच्छन्न रूप में होने लगी। यह मंदिर अहमदाबाद में आज भी श्रीद्वारकाधीश-मंदिर के नाम से प्रख्यात है। श्रीव्रजरायजी ने यहाँ का पता लगा लिया और वे बादशाही फरमान लेकर अहमदाबाद जा पहुंचे। सैनिक सहायता लेकर

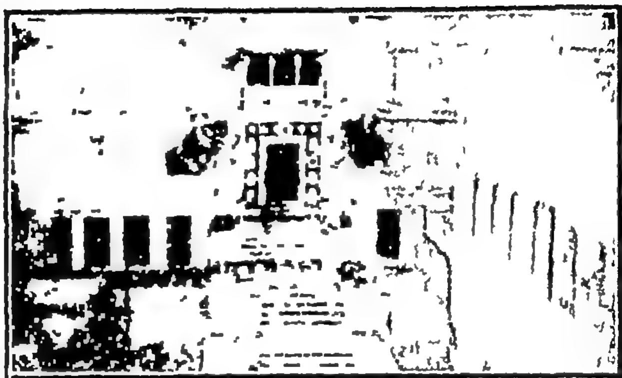
उन्होंने मंदिर को जा घेरा और पालना में से वे छोटे स्वरूप श्रीबालकृष्णजी को उठाकर वे सूरत ले गये। वहां उस समय अंग्रेजों की हुकूमत कायम हो रही थी। श्रीव्रजरायजी ने वहां मंदिर बनवाया। यह भी अच्छे विद्वान और राजनीति-कुशल पुरुष थे।

इस समय की विपत्ति से बचने के लिये मेवाड के महाराणा राजसिंहजी ने जो इस घर के सेवक और हिन्दुधर्म के प्रबल संरक्षक थे श्रीव्रजभूषणजी को श्रीद्वारकाधीश को मेवाड में ले आने का अनुरोध किया। फलत सं० १७२६ के अन्त में गुजरात प्रान्त के अहमदाबाद से यह तृतीय पीठ उठ कर मेवाड की ओर अग्रसर हुआ।

सं० १७२७ में सादडी स्थान से स्वय महाराणा ने राजकीय लवाजमा के साथ बडे उत्साह से श्रीद्वारकेश प्रभु को पधराकर कांकरोली के पास आसोटिया गाम में विराजमान किया। जो कि, प्राचीन समय से उनको समर्पित था और रायसागर तालाब का बांध बनने के कारण यहाँ कोई और स्थान निश्चित नहीं हो पाया था। आसोटिया के छोटे से मंदिर में श्रीद्वारकेश प्रभु बिराजे और मेवाड के भक्तों के मनोरथ पूरा करने लगे।

औरंगजेब के जुल्मी कानून के कारण गोकुल छोडकर दूसरे निधि-स्वरूप भी यत्रतत्र देशी रियासतों के आश्रय में चले गये। और आग्रा, कोटा, जोधपुर, कृष्णगढ आदि में कुछ समय विता कर सं० १७२८ में ही श्रीनाथजी भी महाराणा राजसिंहजी की प्रार्थना और सुरक्षा के वचन पर मेवाड में पधारे। कांकरोली, रायसागर से ११ माइल की दूरी पर सिंहाड







श्री मंदिर का प्रधान द्वार.



गो० श्रीबालकृष्णलालजी महाराज

प्रा सं १९२४–७३

नामक गुप्त पार्वत्य प्रदेश में मंदिर बनवा कर उसका नाम श्रीजीद्वार-नाथद्वारा रक्खा गया। श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा-पूजा इस सुरक्षित राज्य में अपने पूर्व वैभव के साथ होने लगी। उस समय भारत में एकमात्र महाराणा राजसिंहजी ही ऐसे वीर क्षत्रिय राजा थे, जो सर्वस्व होम कर भी हिन्दू-संस्कृति की रक्षार्थ बद्धपरिकर थे।

श्रीव्रजभूषणजी के अनन्तर उनके पुत्र श्रीगिरिधरजी महाराज (द्वि०) इस पीठ के अधिपति हुए। इनका समय सं० १७४१ से १८०३ तक है। इन्होंने बड़ी बुद्धिमत्ता और पांडित्य के साथ संस्थान की सुरक्षा और समृद्धिवृद्धि की, महाराणा संग्रामसिंहजी के राज्यकाल में इन्होंने सं० १७७६ में कांकरोली का मंदिर बन जाने पर श्रीद्वारकाधीश प्रभु को रायसागर के तट पर विराजमान किया। सं० १७३२ के लगभग रायसागर का कार्य पूर्ण हो चुका था। और उसके बाद किनारे पर मंदिर बनवाना शुरू किया गया था। इस मंदिर का नाम उस समय श्रीगिरिधरजी के द्वारा स्थापित किये जाने से 'गिरिधरगढ' रक्खा गया। इस प्रकार श्रीद्वारकेश प्रभु सं० १७२७ से लेकर सं० १७७६ तक आसोटिया में कुल ४९ वर्ष विराजमान रहे।

आसोटिया से हटकर ऊपरी स्थान में बसने का कारण रायसागर जल का प्लावन भी था। जो सं० १७५६ में अतिशय वृष्टि के कारण हुआ था, और जिसके कारण आसोटिया तथा आस-पास की जमीन तीन दिन तक जल में डूबी रही थी। इस समय श्रीद्वारकेश प्रभु पास की छोटी सी पहाडी पर नीम के वृक्ष के नीचे छाया में विराजमान रहे और वहां कोई सौकर्य न

होने से आपने देवल की दाल आरोग कर सुदामा के तडुलों की कमी पूरी की, । इस समय से इस स्थान का नाम देवलमगरी कहा जाता है । वह कांकरोली से आसोटिया जाते बीच में है। जिस नीमवृक्ष के नीचे प्रभु ने विश्राम किया था, उसकी लकडी का नौमहला बंगला बनवाया गया, जो प्रतिवर्ष दिवाली के उत्सवों में प्रभु के हटरी का काम देता है ।

श्रीगिरिधरजी के बाद उनके स्थान पर उनके पुत्र श्रीव्रजभूषणजी (छि०) आसीन हुए । इनका समय सं० १७६५ से सं० १८३३ तक है । यह अच्छे विद्वान् व्याख्याता और राज नीतिज्ञ पडित हुए । इन्हों ने कई ग्रन्थों की रचना की और अच्छे २ विद्वानों को आश्रय में रक्खा । सम्प्रदाय के प्रकाड आचार्य श्रीहरिरायजी से इन्होंने विद्याध्ययन किया और चारों ओर प्रदेशयात्रा कर वैष्णवधर्म का प्रचार । जयपुर के महाराजा श्रीमाधवसिंहजी ने इनसे वैष्णव धर्म की दीक्षा ली और ४० हजार की जागीर समर्पण कर जयपुर में श्रीद्वारकाधीश के मदिर की प्रतिष्ठा कराई ।

इनके समय में मेवाड-राज्य में कई राजनैतिक क्रान्तियां हुई जिनमें कांकरोली को भी भय हुआ, पर महाराजश्री ने अपने चातुर्य से उसकी सतत रक्षा की । इन सब कारणों से इनका नाम श्रीव्रजभूषणजी 'नीतिवारे', इस प्रकार प्रसिद्ध हुआ ।

श्रीव्रजभूषणजी के व्रजनाथजी पुत्र हुए । इनका समय सं० १७८८ से १८२५ तक है । यह योग्य और विद्वान थे । पर अपने पिता के आगे ही गोलोकवासी हो गये, अत तिलकायित नहीं हो सके ।

श्रीव्रजभूषणजी के बाद उनके पौत्र श्रीविट्ठलनाथजी तिलकायित-पद पर वैठे, और इन्होंने श्रीप्रभु की सेवा में

वैभव का समावेश किया। यात्रा कर वैष्णवों से मेवा ली और संस्थान को सुदृढ बनाया। इनका समय सं० १८११ से १८४९ तक है। इनके छोटे भ्राता श्रीगोकुलनाथजी थे, जो आकार स्वरूप और बोलचाल ढंग में इनही जैसे थे। इन दोनों को अलग २ पहिचान लेना कठिन था। विठ्ठलनाथजी के पुत्र व्रजभूषणजी (तृ०) के बाद इन्ही गोकुलनाथजी के पुत्र श्रीपुरुषोत्तमजी इस पीठ के तिलकायित हुए थे। क्योंकि, व्रज-भूषणजी के कोई पुत्र विद्यमान नही था।

श्रीविठ्ठलनाथजी के बाद तत्पुत्र श्रीव्रजभूषणजी (तृ०) कांकरोली के अधिपति हुए। इनका समय सं० १८३५ से १८७६ तक है। यह विद्वान और चतुर पुरुष थे। यद्यपि कुछ समय तक यह अपने काका श्रीगोकुलनाथजी की अभिभावकता में संस्थान का कार्य चलाते रहे, पर आगे स्वतन्त्र हो गये और श्रीगोकुलनाथजी सूरत जाकर वहां के मंदिर की व्यवस्था में संलग्न हो गये।

श्रीव्रजभूषणजी के समय मेवाड की दुर्बलता का लाभ उठा-कर सं. १८५८ में जसवन्तराव हुलकर राज्य के ऊपर अधिकार जमाता घुसता चला आया। नाथद्वारा से एक लाख और कांक-रोली से चालीस हजार रुपयों की वसूली उसने चाही, अन्यथा लूट लेने का डर बताया। परिणामतः श्रीनाथजी और विठ्ठल-नाथजी ठाकुर को महाराणा के सैनिक-बल के साथ उदयपुर होकर घसियार नामक गुप्त पार्वत्य स्थान मे पहुचाया गया। नाथद्वारा के राज्य कर्मचारियो ने एक लाख रुपया देकर उससे पीछा छुडाया। श्रीव्रजभूषणजी महाराज ने चालीस हजार रु० की पूर्ति में सोने का पालना, चांदी के किंवाड और आभूषण

देकर कांकरोली की रक्षा की और श्रीद्वारकेश प्रभु को यात्रा के श्रम से बचाया।

इसी समय के लगभग मेरों का व टोंक के नवाव का भी आक्रमण कांकरोली पर हुआ, पर कुछ ऐसा प्रताप रहा कि—कोई क्षति नहीं हुई, मेर लोग तथा टोंक का नवाव यहां रक्षार्थ शिलालेख लगाकर और जागीर भेट कर वापिस चले गये। इस प्रकार व्रजभूषणजी ने अपने चातुर्य से ठिकाने को बचाया। नगर की सुरक्षार्थ व्यवस्था की। राजा महाराजाओं से परिचय बढाकर ठिकाने को समृद्ध किया।

इसके बाद राजनैतिक चक्र धीरे-धीरे बदला। मेवाड की भी स्थिति सुधरी। महाराज श्रीव्रजभूषणजी ने महाराणा का सहयोग पाकर श्रीनाथजी को घसियार स्थान से वापिस नाथद्वारा पधराकर विराजमान किया। इस समय नाथद्वारा के तिलकायित श्रीदामोदरजी (दाउजी) महाराज लगभग १३ वर्ष के अल्पवयस्क थे। श्रीनाथजी सं० १८६७ फा० व० ७ के दिन नाथद्वारा पुनः प्रतिष्ठित हुए। जिससे नाथद्वारा पुन आबाद होने लगा। इस समय बहुत काल तक श्रीनाथजी की सेवा-पूजा का प्रबन्ध कांकरोली के तिलकायित के परामर्शानुसार चलता रहा। सं० १८७६ में श्रीव्रजभूषणजी ने नित्यलीला प्रवेश किया। इनके पुत्र श्रीगिरिधरजी (ज० सं० १७५४) सं० १७७० के लगभग विद्यमान नहीं रहे।

इनके अनन्तर (किसी पुत्रसंतति के न होने से) तिलकायित गादी पर उनके काका श्रीगोकुलनाथजी के पुत्र श्रीपुरुषोत्तमजी विराजे। इनका समय सं० १८४७ से सं० १९०३ तक है। इनके

समय श्रीद्वारकाधीश प्रभु की सेवा का अच्छा प्रबन्ध हुआ। क्योंकि, देश में प्राय. सुख शान्ति स्थापित हो गई थी। प्रदेश-यात्रा का सौक र्य हो गया था। महाराजश्री ने गुजरात आदि प्रान्तों में जाकर वैष्णव-धर्म का प्रचार किया। धर्म की दीक्षा दी। यह संस्कृत हिन्दी के विद्वान थे। हिन्दी के अच्छे कवि भी।

इनके समय नाथद्वारा में सात स्वरूप के पधराने का महान उत्सव हुआ, जिसमें इन्हों ने श्रीद्वारकाधीश को भी पधराया। पर उसके साथ ज्ञातीय संघर्ष इन्हे करना पडा, कारण कि, इस समय श्रीबालकृष्णजी (सूरत) के छट्ठे घर में गोद लेने का प्रश्न विकट रूप में चल रहा था। सं० १८७२ का० शु० १ को यह उत्सव सम्पन्न हुआ था।

इसी प्रकार नाथद्वारा में सं० १८९६ में काशीस्थ गो० श्रीगिरिधरजी ने श्रीमुकुन्दरायजी को पधराकर चार स्वरूप का उत्सव किया। इस समारोह के समय श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज ने श्रीद्वारकाधीश को नाथद्वारा सवारी के साथ पधराया था। इसी साल कांकरोली में वडा भारी छप्पन भोग का मनोरथ और समस्त कांकरोली निवासी जन तथा समागत वैष्णवों को प्रसाद वितरण किया गया। इस समय कांकरोली की अच्छी उन्नति हुई। सं० १८९४ में उदयपुर के महाराणा जवानसिंहजी ने ठिकाने की रक्षा और समृद्धि के लिये कतिपय राजकीय शासनाधिकार महाराजश्री को प्रदान किये। तब से कांकरोली का देवस्थान ठिकाना और अन्तर्गत स्वायत्तशासनाधिकारी जागीर गिना जाने लगा। सं० १९०३ में वडोदा स्थान पर आपका नित्य लीला प्रवेश हुआ।

श्रीपुरुषोत्तमजी के कोई पुत्र सन्तति नहीं थी। अत: उन्होंने अपनी पिछली वय में प्रथम पत्नी के गत हो जाने पर दूसरा विवाह किया था। श्रीपद्मावती बहूजी यद्यपि अल्पवयस्क थीं, जब कि, श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज का देवलोक हुआ था। पर यह थीं विदुषी और चतुर राजनीति-कुशल। इन्होंने ठिकाने को संभाला और श्रीद्वारकाधीश प्रभु की सेवापूजा में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं आने दी। इनका समय सं० १८९२ से १९३९ तक है। इनकी कार्य कुशलता को देखते हुए महाराणा सज्जनसिंहजी ने अन्य ठिकानों की तरह काकरोली के लिये भी कुछ और विस्तृत शासकीय अधिकार दिये। जिससे काकरोली एक छोटा सी राजसी ठाठ की जागीर बन गई। काकरोली को यह अधिकार सं० १९३६ में प्राप्त हुए। श्रीपद्मावती माजी ने योग्य शासन से इस पीठ की रक्षा की और कई राजा महाराजाओं से जमीन जायदाद प्राप्त की।

सं० १९०८ में श्रीमाजी महाराज ने श्रीगिरिधरलालजी को गोद लिया, और उन्हे एक योग्य पीठाधीश्वर बनाया। जब तक यह वयस्क नहीं हुए, सारा प्रबन्ध माजी महाराज ही करती रहीं।

श्रीगिरिधरलालजी का समय सं० १८९८ से १९३५ तक है। यह योग्य विद्वान सुशिक्षित महापुरुष थे। इन्हों ने वय प्राप्ति के साथ ही वैष्णव-सृष्टि में धर्म का अच्छा प्रचार किया, गुजरात में अनेक जन आपके शिष्य हुए और कई मंदिर आपके भेट आए। बड़ौदा के महाराज श्रीखंडेराव गायकवाड ने भी आपको सन्मानित किया और मंदिर के लिये जागीर भेट की। सं० १९३० में मथुरा का प्रसिद्ध राजाधिराज श्रीद्वारकाधीश का मंदिर

आपको समर्पित किया गया। मंदिर के अधिपतियों ने सेवापूजा का भार महाराजश्री को जागीर सहित सौंप दिया। उस समय से वे और उनके वंशज सदा के लिये ट्रस्टी रूप में माने जाने लगे। इस समय में ही मथुरा के राजाधिराज श्रीद्वारकाधीश की पूजा पुष्टिमार्ग की पद्धति से प्रारंभ हुई। श्रीगिरिधरलालजी महाराज ने उसकी अच्छी व्यवस्था की इधर कांकरोली में भी श्रीद्वारकाधीश के सेवा भोग का वैभव बढा और कई विशाल उत्सव हुए। कांकरोली अतिशय सौभाग्यशालिनी हो गई।

सं० १९३५ में आपश्री का गोलोकवास हुआ, तब अपने पुत्र रूप में माजी महाराज ने श्रीवालकृष्णलालजी महाराज को पुन दत्तक लिया।

श्रीगिरिधरलालजी के अनन्तर श्रीवालकृष्णलालजी महाराज तिलकायित हुए। इनका समय सं० १९३५ से सं० १९७३ तक है। इन्होंने कांकरोली को विविध उन्नतियों को संबल दिया और अनेक प्रकार के श्रीद्वारकाधीश प्रभु के मनोरथ किये। वैष्णव जनता तथा जाति-समाज एव इतर धर्मानुयायियों में आपकी खूब प्रतिष्ठा बढ़ी। जिसका कारण आपकी साहित्य-संगीत-कला तीनोंकी दक्षता और प्रचार की प्रवृत्ति थी। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का यह साहित्यिक युग था। अतः इस समय महाराजश्री ने साहित्य में मनोयोग और पूर्ण आर्थिक साहाय्य देकर उसे पनपाया था। कई विद्वान संगीतज्ञ और कलाप्रेमी इनकी योग्यता की प्रशंसा करते थे। धार्मिक सभा संमेलन और प्रचार के इस युग में इन महाराजश्री ने जो भाग लिया वह इतिहास से विदित होता है।

श्रीद्वारकाधीश प्रभु की सेवा का विशाल आयोजन कर आपने कई मनोरथ किये। यहां के मंदिर महलों का निर्माण कराया। सं० १९६५ में कोटा से श्रीरणछोडलालजी महाराज ने श्रीमथुरेशजी को नाथद्वारा पधराया और विविध उत्सव किये। उक्त महाराजश्री के आग्रह पर श्रीद्वारकेशप्रभु भी नाथ द्वारा पधारे और श्रीमथुरेशजी कांकरोली। यहा दोनों स्वरूपों के अनेक मनोरथ किये गये। महाराजश्रीने राजस्थान गुजरात दोनों प्रान्तो में लगभग ३१ मदिर स्थापित किये और वैष्णवों को सेवा दर्शन का लाभ पहुचाया।

सं० १९७३ में आपका गोलोकवास हुआ और आपके बाद ज्येष्ठ आत्मज श्रीद्वारकेशलालजी १ वर्ष तक तिलकायित हुए। आपका जन्म सं० ९६४ और अन्तिम समय सं० १९७४ है।

श्रीबालकृष्णलालजी महाराज के अनन्तर आपके द्वि० पुत्र श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज कांकरोली के वर्तमान तिला-कायित हैं। आपका जन्म सं० १९६८ है। आपका वैदुष्य कलाप्रियता, साहित्यिक रसिकता, व्यावहारिक चातुर्य सभी विश्रुत है। इनके बाल्यकाल में मातुश्री सौन्दर्यवती माजी महाराज ने जिस निष्ठा, दृढता, योग्यता एव बुद्धिमानी से ठिकाने के वैभव प्रतिष्ठा और गौरव की रक्षा करते हुए कांक रोली पर शासन किया था वह मेवाड–शासन और वैष्णव सृष्टि में एक स्पृहणीय कार्य था। कांकरोली के घर में यह एक आश्चर्य का विषय है कि, यहां पर दो स्त्रीजन शासक हुए और दोनोंने विविध सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक परिवर्तनों के समय यहां की मर्यादा को गौरवान्वित किया उसे कोई आघात नहीं पहुंच पाया। महाराणा श्रीफतहसिंह

उदयपुर-नरेश का गुरुघर के प्रति भक्तिभाव एक आदर्श था। वे कांकरोली की मानमर्यादा की रक्षा के लिये कोई वात उठा नहीं रखते थे। महाराज श्रीव्रजभूषणलालजी के समय में उदयपुर के महाराणा श्रीभूपालसिंहजी भी एक माननीय नरेश हुए जिन्होंने श्रीद्वारकाधीश के घर को सदा समृद्ध रखने की चेष्टा की।

महाराणा श्रीभूपालसिंहजी के समय में भारत स्वतंत्र हुआ और उसने अपना नवनिर्माण प्रारंभ किया। परिणामत. एकाकार राजस्थान प्रान्त वना और वे अन्तिम महाराज-प्रमुख स्वीकार किये गये। राजपूताना की समस्त रियासतों का, ठिकानों का, जागीरों का एकीकरण किया गया और सं० २००५ में [ता० ६-९-१९४८ के दिन] संकुचित शासनाधिकार आदि समाप्त कर उसे केन्द्रीकरण कर दिया गया।

कांकरोली के वर्तमान महाराज श्रीव्रजभूषणलालजी, उनके भ्राता श्रीविठ्ठलनाथजी दोनोंने मिलकर कांकरोली की अच्छी उन्नति की है। श्रीद्वारकाधीश प्रभु के अनेक मनोरथ किये और कई संस्थाओं को स्थापित कर अपनी योग्यता का परिचय दिया है। महाराणाओं के समय आपने जहां उदयपुर की यात्राकार राजकीय सन्मान प्राप्त किया वहां विशाल व्रजपरिक्रमा कर धार्मिक ख्याति भी। आपके चिरंजीव श्रीव्रजेश कुमार वावासाहिव भी एक होनहार विद्वान नवयुवक हैं।

श्रीद्वारकेश प्रभु इस सम्प्रदाय और कांकरोली की सर्वविध उन्नति करते हुए भी अपने मन्दस्मित से समय-समय पर जिन लीलाओं का परिदर्शन कराते हैं वे वडी गंभीर और अतर्क्य हैं। उनकी सदा कल्याणमयी दृष्टि जन का हित सम्पादन करती है। अपने प्रिय मार्ग की रक्षा, यह तो निर्विवाद है।

वर्तमान संस्थान—

शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के तृतीय पीठ कांकरोली के जितने भी तिलकायित हुए हैं वे सब विद्वान यशस्वी एवं आदर्श चरित्र हुए हैं। जिसका परिणाम यह देखने में आया है कि, राजपूताना, मध्य भारत, गुजरात, युक्त प्रान्त आदि कई प्रान्तों में अन्य पीठों की अपेक्षा यहां की वैष्णव सृष्टि अधिक संख्या में है और इसके अधीनस्थ कई शु० सां० मन्दिर यत्रतत्र विद्यमान हैं। मथुरा का प्रसिद्ध राजाधिराज का मन्दिर भी यहां के अन्तर्गत है, जो भारत के समृद्धिशाली मन्दिरों में से एक है।

कांकरोली मेवाड में एक गौरवपूर्ण ठिकाना रहा है। इसे प्रायः सभी राजस्थान के राज्यों से जागीरें प्राप्त रहीं हैं। अनेक नरेश यहां के शिष्य रहे हैं। मेवाड के महाराणा जगतसिंहजी से लेकर आज श्रीभूपालसिंहजी के अनन्तर उनके पुत्र श्रीभगवतीसिंहजी तक यहांके कंठीबद्द शिष्य होते आए है। राज्यासीन होने के बाद वैष्णव धर्म की दीक्षा लेना और राज्यारोहण के समय कांकरोली के तिलकायितों के द्वारा तिलक कराना एक ऐतिहासिक गौरव रहा है।

इस प्रकार सं० १७२६ से लेकर वर्तमान समय (२०१४) तक श्रीद्वारकाधीश प्रभु की यह द्वारकानगरी अपना एक आकर्षण रखती है। और लगभग तीनसौ वर्ष का धार्मिक, ऐतिहासिक राजनैतिक, साहित्यिक महत्त्व धारण किये हुए विद्यमान है।



देव-दर्शन—

कांकरोली नगरी में सर्वप्रथम आकर श्रीद्वारकाधीश प्रभु के दर्शन का लाभ लेना चाहिये। नगरी में सबसे ऊंचे स्थान पर अभ्रंलिह प्रासाद हैं जहां प्रभु का मंदिर है। नगरी की साफ सुथरी सड़के हैं और ऊपर तक जाने का मार्ग है। प्रधान दरवाजा-जहां नौबत बजती है-के भीतर मंदिर (भगवद्धाम) विद्यमान है, जो रायसागर के तट पर शोभित हो रहा है। भिन्न २ ऋतुओं में ऋतु के समन्वय के साथ प्रतिदिन प्रात से लेकर सायं तक ८ दर्शन श्रीप्रभु के खुलते हैं। विशाल चौक में श्रीविग्रह के मनोहर दर्शन कर आत्मा पवित्र हो जाती है।

दर्शन इस प्रकार होते हैं—

पूर्वान्ह में १ मगला २ शृगार ३ ग्वाल ४ राजभोग।
अपरान्ह में १ उत्थापन २ भोग ३ संध्याआर्ति ४ शयन।

इन दर्शनों के समय पर बाहर से सभी प्रान्तों के यात्रीगण आते रहते और दर्शन कर अपना जीवन सफल करते हैं। इन दर्शनों में यदि आप अध्ययन की दृष्टि से देखेंगे, आपको दर्शनजनित आनन्द के साथ भक्ति, साहित्य, संगीत कला और व्यावहारिकता का समावेश मिलेगा, जो पुष्टिमार्ग की सेवा-प्रणाली की एक विशेषता है। श्रीप्रभु की नन्दरायजी के घर श्रीयशोदाजी द्वारा बालभाव की सेवा के साथ द्वारका की राजसी ठाठ की और निकुंजभाव की श्रृंगारिक सेवा-भावना का समावेश मिलेगा, जो मानवता में पूर्णता लाने का एक आदर्श है।

वर्ष में कई विशाल मनोरथ और उत्सव सम्पन्न होते रहते हैं। जिनमें वैशाख कृ० ११ श्रीवल्लभ जयन्ती, आषाढ शु० २ रथयात्रा, भाद्र कृ० ८ जन्माष्टमी और नन्दमहोत्सव, कार्तिक शु० १ अन्नकूट, पौष कृ० ९ श्रीगुसांइजी का प्रा० दिन, तथा चैत्र कृ० १ दोलोत्सव आदि महत्वपूर्ण और प्रसिद्ध हैं। श्रावण के झूले और वसन्त के फाग के खेल देख कर प्रचलित सेवा-प्रणाली का स्वरूप समझ मे आ सकता है कि, इस मार्ग की सेवा-पद्धति में साहित्य, संगीत, और कला को कितना स्थान मिला है।

प्रधान मन्दिर के पास ही श्रीमथुरेशजी का मन्दिर है। जिसके अधिपति गो० श्रीविठ्ठलनाथजी महाराज हैं। यहां भी उसी प्रकार किन्तु संक्षिप्त रूप में सेवा पूजा होती है।

मन्दिर में ही श्री की सेवा पूजा की व्यवस्था के लिये श्रीकृष्ण भंडार और समाधान विभाग है, जहां वैष्णवों के दर्शन निवास प्रसाद आदि की व्यवस्था होती है। कांकरोली में बाहर से आनेवाले वैष्णवों को धर्मशालाओं में ठहराने की अच्छी सुविधा है।

दर्शनीय स्थान—

यहां कई स्थान दर्शनीय हैं, जहां यात्री मनोविनोद के साथ कई प्रकार का अध्ययन और गवेषणा कर सकता है। वे इस प्रकार हैं—

१ विद्या-विभाग—

श्रीद्वारकाधीश के मन्दिर में ही चौक के विद्याविभाग नामक संस्था का कार्यालय है। इस विशाल

संस्था की स्थापना वर्तमान महाराजश्री ने सं० १९८५ में की है। यह एक विद्या-शिक्षा-कला-साहित्य-प्रचार और संरक्षणात्मक सांस्कृतिक संस्था है। जो भारत की इस प्रकार की संस्थाओं में गणनीय है। महाराजश्री और उनके अनुज इसके अध्यक्ष और उपाध्यक्ष हैं। प्रो० श्रीकंठमणि शास्त्री इसके संचालक हैं। यह निम्न विभागों में अपना कार्य संचालित करती है—

(क) श्रीद्वारकेश-पुस्तकालय—

इसमें कई हजार मुद्रित ग्रन्थों का संग्रह है। जिसमें प्रायः सभी भाषाओं का संग्रह है। पुस्तकों का वर्गीकरण आधुनिक ढग से किया गया है। यहां बैठ कर विविध ज्ञान का सम्पादन किया जा सकता है।

(ख) श्रीद्वारकेश-वाचनालय—

श्रीद्वा० पुस्तकालय के अन्तर्गत यह विभाग है। यहां प्रतिदिन अनेक नागरिक आकर अपना सामयिक अध्ययन करते हैं। सामयिक समाचार पत्र पत्रिकाएं जो हिन्दी गुजराती आदि में आती हैं, धार्मिक साहित्यिक राजनैतिक दृष्टि से इसकी शोभा बढाती हैं।

(ग) श्रीसरस्वती-भंडार—

इस विभाग में कई हजार हस्तलिखित प्राचीन और नवीन ग्रन्थों का संग्रह है, जिसमें संस्कृत, हिन्दी, गुजराती भाषाओं का समावेश होता है। इस संग्रह का प्रारंभ सं० १६३० लगभग इसके आदि संस्थापक श्रीबालकृष्णलालजी महाराज ने किया था। तब से उत्तरोत्तर यह वृद्धिगत होता

रहा है। इसमें कई अच्छे २ अन्यत्र अनुपलब्ध ग्रन्थ विद्यमान हैं, जो प्राचीनता और विषय तथा कला की दृष्टि से अतिशय उपादेय हैं। इस संग्रह में से (श्रीद्वारकेश-ग्रन्थमाला द्वारा) प्राचीन और अर्वाचीन संस्कृत हिन्दी और गुजराती के महत्त्व पूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किये जाते हैं जिनकी अच्छी ख्याति है। यहां के साहित्य से कई प्रसिद्ध युनिवर्सिटियों के विद्वानों ने लाभ उठाया है और उठाते रहते हैं। साहित्यिक भारतीय संस्थाओं को यहां से अच्छा सहयोग दिया जाता है।

(घ) श्रीद्वारकेश चित्र-शाला और संग्रहालय—

यह विभाग ग्रन्थागार के पास ही एक विशाल कक्ष में अवस्थित है, जहा भारतीय विविध कलाओं के प्राचीन हस्तलिखित सहस्रशः चित्र संग्रहीत हैं। अनेक दर्शनीय वस्तुए इतिहास के साथ कला पर प्रकाश डालती हैं। इस विशाल संग्रह को देख कर कई भारतीय और पाश्चात्य विद्वान प्रभावित हुए हैं और उन्होंने सुन्दर अभिप्राय लिखे हैं।

विद्याविभाग कांकरोली के गौरव की वस्तु है, जहा से प्रभावित हुए बिना कोई जा नहीं सकता।

२ श्रीद्वारकाधीश की गोशाला, आसोटिया—

नगरी से लगभग १ माइल पर पूर्व में श्रीप्रभु की गोशाला है। यह स्थान प्राचीन रूप में वह है जहां प्रारंभ में श्रीद्वारकेश प्रभु गोकुल से आकर विराजमान हुए थे। एक टेकरी पर पडे हुए प्राचीन मंदिर के पाषाण-खंड आज भी उसका स्मरण दिलाते हैं। यहां भारत का गोधन पालित होता है, जो प्रभु की सेवा में उपयोग आता है।

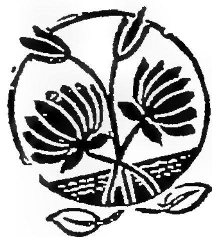
३. श्रीगुप्तेश्वर महादेव—

कांकरोली के दरवाजा के पास नगरी के नीचे गुफा में श्रीगुप्तेश्वर महादेव विराजमान हैं। यह स्थान कांकरोली की पाल बनने से पूर्व का है। सुरंग में से नीचे जाकर शिवजी के दर्शन होते हैं। ऊपर अधर शिला है और पिंडी के चारों ओर स्वाभाविक जल भरा रहता है।

४. नौचौकी रायसागर बांध—

कांकरोली से पश्चिम रायसागर तट पर १ माइल दूर विद्यमान है, जहां शिल्प देखने योग्य है। इसका वर्णन प्रथम किया जा चुका है।

कांकरोली से अन्यत्र चारों ओर जाने के लिये नयमित मोटर बस सर्विस चालू है, जिसके द्वारा यात्रा कर आसपास के निम्न लिखित स्थानों का निरीक्षण किया जा सकता है।



आसपास के अन्य स्थल

१. नाथद्वारा—

कांकरोली से ११ माइल पर नाथद्वारा नगर है- जो श्रीनाथजी गोवर्द्धनोद्धरणधीर का नगर होने से श्रीजीद्वार नाम से भी विख्यात है। यहां पुष्टिमार्ग के संस्थापक श्रीवल्लभाचार्य के द्वारा प्रादुर्भूत सेवा-प्रणाली का वैभवात्मक वर्चस्व रूप और भक्ति-भागीरथी का अजस्र प्रवाह देखने को मिलता है। शु० स० का मुख्य केन्द्र नाथद्वारा राजस्थान का विशेष गौरव पूर्ण संस्थान है, जहां भारत के सभी नगरों और यहांतक कि, विदेश से भी यात्रियों का समुदाय दर्शनार्थ आता रहता है। पुष्टिमार्ग की सेवा प्रणाली से यहां भी सेवा होती है और आठ दर्शन खुलते हैं। पास में ही श्रीनवनीतप्रियजी, श्रीविठ्ठलनाथजी, मदनमोहनजी, वनमाली-लालजी आदि के मदिर हैं। नगर में कई विशाल धर्मशालाए हैं, जहां निवास का सौकर्य मिलता है। जन्माष्टमी अन्नकूट आदि के उत्सवों पर लाखों यात्री आकर प्रभु के दर्शन और सेवा का लाभ उठाते हैं। भगवत्प्रसाद के दर्शन कर देश की समृद्धि का ध्यान आता है।

यहांके गोस्वामि- तिलकायित श्रीगोविंदलालजी महाराज वडे मनस्वी, उदारचेता और प्रभावशाली तथा गंभीर सुधारक हैं। श्रीनाथद्वारा में और मंदिर में कई स्थान दर्शनीय हैं। यहां की चित्रकारी भारतीय कला में अपना स्थान रखती है। नगर के वाहर लालबाग, कछवाई, बनास का बांध, गौशाला आदि दर्शनीय हैं। यहां आधुनिक सभी सुविधाएं प्राप्त हैं। नाथद्वारा का रेल्वे स्टेशन सात मील है, जहां से मारवाड,मावली होकर उदयपुर, चित्तौड जाया जा सकता है।

२. हल्दी घाटी—

नाथद्वारा से मोटर बस या तांगा से जाया जा सकता है। यहां महाराणा प्रतापसिंह और अकबर का प्रसिद्ध युद्ध हुआ था, जो भारतीय राष्ट्रीयता की दृष्टि से महत्वपूर्ण था। यहीं पास में चेतक घोडे की समाधि है। यहां प्रतिवर्ष महाराणा प्रताप की जयन्ति पर मेला लगता है।

३. चारभुजा—

श्रीद्वारकाधीश का चतुर्भुज स्वरूप यहां विराजता है। यह स्थान कांकरोली से पक्की सडक पर २२ माइल दूर है। मारवाड लाइन में चारभुजा रोड स्टेशन से और कांकरोली से बस सर्विस द्वारा यात्रा की जा सकती है। देवझूलनी एकादशी (भा० शु० ११) के दिन यहां लक्खी मेला लगता है, जिसमें अनेक भक्त आकर अपनी मनौती पूरी करते हैं। यह प्राचीन तीर्थस्थल है। यहां से मेवाड के प्रसिद्ध श्रीरूपनाथजी को जाया जाता है जो प्रसिद्ध दर्शनीय स्थान गिना जाता है।

४. कुम्भलगढ और परशुराम तीर्थ—

चारभुजा से प्रायः १० माइल पर गगनचुम्बी पर्वतमालाओं के भीतर उच्च आकाश को छूता हुआ मेवाड का प्रसिद्ध किला कुंभलगढ है, जिसे महाराणा कुंभा ने स्थापित किया था। यहां से पार्वतीय शोभा देखने लायक है। आगे पर्वत-शृंखला के बीच काश्मीर की याद दिलाता हुवा परशुराम महादेवजी का स्थल है, जहां पैदल ही जाना पडता है। मार्ग

में सुरम्य पार्वतीय हरित भूमि, चमेली, गुलाब और विविध पुष्पावली, बहते हुए शीतल झरने मन मोह लेते हैं। स्वाभाविक विशाल गुहा में श्रीशिवजी विराजमान हैं, जो सभी भक्तों के मनोरथ पूर्ण करते हैं। यह स्थली अतिशय दर्शनीय है।

५. एकलिंगजी महादेव—

कांकरोली से उदयपुर जाते नाथद्वारा के आगे यह स्थान बीच में पड़ता है। कांकरोली से २५ माइल और नाथद्वारा से १४ माइल है। यहांकी पर्वतमाला कैलास की रमणीयता का स्मरण दिलाती है। यह मेवाड के महाराणाओं का प्रसिद्ध इष्टदेव स्थान है। महाराणा बापा रावल के द्वारा प्रतिष्ठापित श्रीत्र्यम्बकेश महादेव पंचमुख होकर विराजमान हैं। तीर्थ-स्थान की सेवा पूजा रागभोग ईश्वरीय है और यहां पूजा सेवा ब्रह्मचारी संन्यासी करते हैं, जो गुसाइजी कहलाते हैं। मंदिर भव्य और प्राचीन है।

६. उदयपुर—

यह नगर महाराणा उदयसिंहजी ने बसाया था। कुछ वर्ष पूर्व यह मेवाड राज्य की राजधानी था। पर राजस्थान बन जाने से अब प्रधान नगर गिना जाता है। राजधानी होने के समय इसका कुछ और ही वैभव शोभा थी, जहां भारतीय प्राचीनता और राजपूती ठाठबाठ देखने योग्य था। नगर भव्य विशाल प्राकृतिक शोभासम्पन्न दर्शनीय है। यहां गुलाब बाग, जगमंदिर, जगनिवास, सहेलियों की बाड़ी, सज्जनगढ

राजप्रसाद देखने योग्य स्थल हैं। विक्टोरिया म्युजियम अच्छा संग्रहालय है। यहां चारों ओर जलाशयों की शोभा अतिशय मनोमोहक है। नौका-विहार और पर्यटन का आनन्द यात्री को विशेष आकर्षित करते हैं। निवास के लिये विशाल होटलें तथा फतह-मेमोरियल धर्मशाला है। यहां से मारवाड और चित्तौड दोनों ओर रेल्वे लाइन जाती है।

बांसवाडा, खेरवाडा जाते समय मार्ग में श्रीकेसरियानाथजी ऋषभदेवजी का प्राचीन तीर्थ स्थल है, जहां जैन और सनातन धर्म दोनों पद्धति से सेवा पूजा होती है। उदयपुर नगर में सभी प्रकार की आधुनिक सुविधाएं मिलती हैं। और कई अच्छी शिक्षासंस्थाएं हैं, जो यहां के जीवन को जाग्रत किये है। महाराणा श्रीभूपालसिंहजी के अनन्तर अब यहांकी गद्दी पर श्रीभगवतीसिंहजी महाराणा आसीन हैं, जो सुरुचिपूर्ण और विद्वान राजवंशीय व्यक्ति है।



इस प्रकार कांकरोली और उसके आसपास के दर्शनीय स्थानों के अवलोकन से जहां यात्रा का आनन्द उठाया जा सकता है, वहां धार्मिक लाभ भी और सांस्कृतिक परिचय भी प्राप्त किया जा सकता है।

सार्वजनिक दृष्टि से यात्रा करनेवालों के सन्मुख निम्नलिखित उद्देश्य रहते हैं—

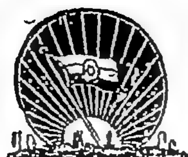
१ पुण्यधामों में जाकर देवदर्शन और ऐतिहासिक स्थानों के परिभ्रमण द्वारा पारमार्थिक एवं लौकिक सुख प्राप्त करना।

२ सत्संगति, प्रकृति पर्यवेक्षण एवं साहित्यिक संस्थाओं से परिचय प्राप्त कर अपने ज्ञान की अभिवृद्धि करना।

३ पुण्योपार्जित द्रव्य के सदुपयोग द्वारा धर्म, देश, समाज की सेवा करना और मानव-कल्याण की साधना में प्रवृत्त होना।

देश-काल-पात्रता का ध्यान रखकर आप अपनी जीवन-यात्रा में भारतयात्रा कीजिये। श्रीकल्याणमय प्रभु सदा आपके पथप्रदर्शक होकर आपके जीवन को सरस उन्नत करे।

शुभम्।





गो चि. श्रीव्रजेशकुमार शर्मा, कांकरोली

[प्रा स. १९९६ पौ. शु १०]

यात्रियो ! जय श्रीकृष्ण ।



आपका समय—

आप और हम जिस काल में या जिस शताब्दी में जी रहे हैं वह स्वतंत्रता और शान्ति का युग है, जिसे चाहे आप कलिकाल कहिए चाहे कलयुग। इसे किसीने "सत्पीडान्यग्र-लोक" आदि शब्दों से भी वर्णित किया है।

पर यह स्वतंत्रता और शांति एक कांच के बरतन के समान है। इसलिए हमें हाथ पर हाथ रख कर लापरवाही से नहीं बैठना चाहिए। इस युग में यह कल और वह कल, न मालूम कितने कारखानों की कलें–मशीन, एंजिन–चला करते हैं दिन और रात। यह रुकने और सोने का जमाना नहीं है। जहां आप रुकेंगे या सो जावेंगे वहीं आपकी स्वतंत्रता और शांति दोनों छिन जावेंगे। स्वतंत्रता और शांति की बडी ही होशियारी से रक्षा करना है। नहीं तो कांच के सुन्दर बरतन के समान एक क्षण में ये बेश-कीमती चीजें टूटफूट सकती हैं और – इन्हींके टूटे हुए टुकडे हमें बहुत बुरे गडेंगे। हम संसार में मूर्ख, पागल और गुलाम बन जावेंगे।

इसलिए जागिए, उठिए और आगे बढ़िए। आपकी यात्रा बहुत लंबी है।

आपका कर्तव्य—

आप तीर्थों की यात्रा करने निकले हैं। आप देव-दर्शन करने निकले हैं। संत, साधु और महात्माओं की सत्संगति की आपको प्यास है। आपकी स्त्रियोंने देवी देवता मनाए होंगे। और न मालूम कितनी कामनाएं लेकर आप अपने घर-द्वार छोडकर निकल पडे हैं। " मन चंगा तो कठौती में गगा " इस कहावत से आपको संतोष नहीं हुआ होगा। घर में बैठे २ ऊबकर आपको भी घूमने की इच्छा हुई है। जेबें भी भारी मालूम पडने लगी होंगी।

खैर! कोई गलती नहीं की। यात्रा के भी अनेक लाभ हैं। नई २ जगहे देखने को मिलती हैं। नए २ व्यक्तियों को देखने और समझने का मौका मिलता है। आबहवा भी पलट जाती है। होशियारी भी आती है। भगवान की सृष्टि भी देखने को मिलती है।

पर आप अधविश्वास लेकर तो नहीं आए हैं? आप हठ धर्म का पालन तो नहीं करते? एक काम के साथ दस काम करने का आपका इरादा है? या आंखे और दिमाग दोनों वद करके आपको सीधा एक मंदिर में घुस जाना है, और भीड में थोड़ी सी धक्कामुक्की कर और दो चार झापटें खाकर लौट आना है?

आप यहां आए हैं तो और भी आसपास के कई सुदर स्थान देखिए-चारभुजाजी, काकरोली, नाथद्वारा और एक-लिंगजी में दर्शन कर हल्दीघाटी, उदयपुर, चित्तौडगढ आदि स्थान भी देखिए। यहां का भूगोल समझिए। यहां का इतिहास

जानिए। यहांके लोगों से मिलिए। कौन थे यहांके त्यागी और प्रतापी? कैसी थी यहांकी स्त्रियां? वे अब क्या से क्या होगए हैं–यह समझिए। यहांके पशु पक्षी देखिए। यहांकी वनस्पति देखिए। यहां किसान कलयुग में कैसी खेती करते हैं–सब आंखे खोल कर देखिए।

अपने देश का एक भाग इस भूमि को भी समझिए। अब तो हमारा देश एक हो गया है। अपने स्थान का हाल उन्हें बतलाइए। उनसे यहांका हाल पूछिए। किसानों और व्यापारियों से मिलिए। यहां यदि आप एक ही स्थान में चिपक जावेंगे तो आपकी यात्रा कैसे सफल होगी?

देखिए! आप पैसा खर्च लेकर चले हैं। बालबच्चे भी आपके साथ हैं। होशियार! गिरहकटों से अपना धन बचाना। पाखण्डियों और बगुला भक्तों से बचना। झूठ विश्वास दिलानेवाले धूर्तों के जाल में न फँसना। अपने बच्चे न खो बैठना। खुद न कोई दुर्घटना में फँस जाना। जिस सवारी में बैठो, जिसमें यात्रा करो, उसके चालक पर नियंत्रण रखना। रास्ता विकट है। धूनी और जटा देखकर आप वहीं न फंस जावे। आपको आगे बढ़ते जाना है।

देखिए! आप तीर्थस्थानों को गंदा तो नहीं करने आए हैं? आप सफाई से रहते हैं? यहांकी कोई गदकी या बिमारी आप अपनी जन्मभूमि में तो नहीं ले जा रहे हैं? छिपाकर आप तो कोई बीमारी यहां नहीं ले आए हैं? यदि हां, तो आप यहां अधिक न टिकिए। आगे बढ़िये। आप यहां की भाषा समझते हैं? नहीं, तो सीख लीजिए। केवल अपनी ही भाषा लिए न बैठे रहिए। आगे बढ़िए।

चिंता की कोई बात नहीं—

आप अपने साथ चिंता की बीमारी लेकर तो नहीं आए हैं ? चिंता आपके गले से तो नहीं लटकी आई ? घरकी कोई फिक्र तो नहीं लग रही है ? ऊपर की बातों से आप किसी चिंता में तो नहीं पड गए ? किंकर्तव्य-विमूढ, अर्जुन सरीखे, तो नहीं हो गए ? आप जिस काम में लगे हैं, उसके परिणाम का चिंता आपको परेशान तो नहीं कर रही है ?

यदि आपका काम सत्कार्य है तो अभी तुरंत फल की चिंता मत कीजिए। यदि आपका काम सत्कार्य नहीं है, बदला लेना है, किसी को ठगना है तो उसके परिणाम का अंत में मिलनेवाले दंड का ख्याल बार २ कीजिए। अपनी तीर्थयात्रा में बुरे इरादों और दुष्कर्मों को पर-पीडन, जन्मजात-गर्व धन का मद आदि असामयिक बातों को छोडते जाइए। ऐसा नहीं कि, यहां तीर्थों पर शासन की सुव्यवस्था न हो।

धर्म और अधर्म को खूब अच्छी तरह समझिए। यहा के पुस्तकालय, शिक्षाकेन्द्र देखिए। अच्छी २ पुस्तकें खरीदिए। जनता जनार्दन की सेवा करनेवाली संस्थाओं की परीक्षा लीजिए। दान कीजिए। आप यदि सच्चे यात्री हैं, सची तीर्थयात्रा करने आए हैं तो सद्बुद्धि रखिए, सत्कामना रखिए सत्संगति कीजिए, सज्जनों से मिलिए। भगवान आपका भला करेगा। आप काम किए जाइए। दर्शन किए जाइए। यात्रा किए जाइए। लेकिन बढते जाइए। सद्गुरु और सत्य की खोज में रहिए। किसी के कहने से किसी को महात्मा न मान लीजिए। आप स्वतंत्र हैं। आपको भी भगवन ने दिमाग दिया है। भेडिया धसानी से

भारत की स्वतंत्रता कायम नहीं रहनेवाली। क्या विद्यार्थी. क्या राजनीतिक दलवाले, क्या व्यापारी, क्या कर्मचारी और क्या धर्मांधयात्री, आप कोई भी हों, अपना अज्ञानरूपी अंधकार मिटाने के लिए सद्गुरु की खोज में आगे बढ़िए।

देखिए ! चिंता न कीजिए। चिंता चिता का काम करती है। यदि कोई चिंता, चाहे वह छोटी-सी क्यों न हो, आपके अंदर है तो समझ लीजिए, वह चिता बन कर आपही को अपने ऊपर बिठाल कर चौबीस घंटे जला रही है। तीर्थ-स्थान पर आकर एक महान उपदेशक के सदुपदेश को लेकर जाइए। वह है, "चिंता कापि न कार्या", याने यदि आपको भगवान में भरोसा है. और सत्कार्य में आप लगे है. तो किसी भी प्रकार की चिंता न कीजिए। "प्रभु सर्वसमर्थो हि ततो निश्चिन्तनां व्रजेत "-प्रभु ही सर्व समर्थ है। इसलिए वही, स्वयमेव करिष्यति "-अपने आप आपको उचित फल देगा और आपका काम कर देगा। आप चिंता न करें।

इसीको श्रीवल्लभाचार्यजी ने दूसरे शब्दों में कहा है. "हरिस्तु सर्वतो रक्षां करिष्यति न संशय "। इसीको उन्होंने अपनी-शिक्षा में दोहराया है-' सेव्य' स एव गोपीशो विधास्यत्यखिलं हि न.'। अपने विवेक धैर्य आश्रय निरूपण- में भी उन्होंने बतलाया है कि "विवेकस्तु हरि सर्वं निजेच्छात' करिष्यति '। बार २ वैष्णव संप्रदाय के प्रमुख आचार्यजी ने यही उपदेश दिया है कि. " सर्वेश्वरश्च सर्वत्मा निजेच्छात. करिष्यति '। उसीको और भी तरह समझाया है कि "चित्तो-द्वेगं विधायापि हरिर्यद्यत्करिष्यति तथैव तस्य लीलेति मत्वा चिन्तां द्रुतं त्यजेत '।

श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के सिद्धान्त के अनुसार प्रभु गोपीश, भगवान, परमात्मा परब्रह्म-जो कुछ भी कहें, वह कृष्ण ही हैं। ये वही कृष्ण हैं जिन्होंने स्वतन्त्रता और शांति स्थापित करने के लिए अर्जुन को उपदेश दिया था कि, तुम केवल कर्मशील बनो, सत्कर्म करते जाओ। फल (परिणाम) की चिंता न करो। आचार्यजी के शब्दों में लीजिए। " पर ब्रह्म तु कृष्णो हि सच्चिदानन्दक वृहत् " या ' कृष्णात्पर नास्ति दैवम् '। अतः इन तीर्थों से यह जीवन के लिए एक छोटा सा मंत्र सीखते जाइए- ' श्रीकृष्णः शरणं मम" इस पाखण्ड प्रचुर लोक में, इस कलिकाल में गति इसीमें है कि, सचेत और सावधान रहकर " श्रीकृष्ण शरणं मम ' जपते जाइए और आगे बढते जाइए।

॥ जय श्रीकृष्ण ॥

निवेदक —
प्रो० दामोदर शास्त्री,
कांकरोली.

